# हिंदुस्तानी रागों का श्रोताओं पर प्रभाव

अशोक दामोदर रानडे

(मूल प्रसिद्धी - संगीत कला विहार, संपा. बी. आर. देवधर, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडळ, मिरज, जनवरी १९७७)

प्रायोगिक मनोविज्ञान तथा तत्सम अन्य अध्ययनक्षेत्र आजकल विविध कलाओं को अधिक आस्था के साथ जाँचते है जिससे विविध कलाप्रकारों तथा उनके मार्गों पर विचार-विमर्श करना, उनका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करना संभव हो गया है। इससे बिना किसी कारण के गूढात्म बने विचार के कई क्षेत्र कुछ कम मात्रा में विस्तृत होने लगे हैं। कम-अधिक मात्रा में भारतीय संगीतकारों ने भी इस दिशा में कदम उठाये हैं। इस संदर्भ में संगीत का अर्थ (संगीत नाटक १०, पृ. ५४, देव तथा विरमाणी), संगीत के रूप (संगीत नाटक २, पृ. १०५, देव तथा नायर) जैसे प्रयत्नों का निर्देश किया जा सकता है। इनमें से किसी भी प्रयत्न का सैद्धांतिक रूप से अंतिम सत्य होने का दावा यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है, ये एक महत्त्वपूर्ण बात है। परंतु ऐसा लगता है कि इस प्रकार के प्रयत्न बडे पैमाने पर होने के पूर्व अन्वेषण प्रणालि के संबंध में अधिक विचार होना चाहिए। ऐसा इतनी तीव्रता से लगने के पीछे दो कारण हैं।

पहली बात यह कि मूल्यांकन विषयक मापदंड अगर सयुक्तिक न हो तो प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक अन्वेषण को पहले ही कदम पर ठेस पहुँचती है। परिणाम संबद्ध विश्लेषण पहले ही से यह मानकर चलता है, कि विशिष्ट कलाकृति अथवा कृति कलात्म है। इसी संदर्भ में हिंदुस्थानी रागों के परिणामों का अन्वेषण शुरू होने के पहले रागों की सांकल्पनिक पहचान अच्छी तरह से होना आवश्यक है। प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के पहले उचित संकल्पना विषयक निर्णय होना आवश्यक है। वास्तव में ऐसा निर्णय अन्वेषण की पूर्वशर्त होती है|

दूसरी बात यह कि संगीत के नाम से पहचाने जाने वाले सभी अविष्कारों में लागू करने की पद्धति एक ही रखकर काम करने के लिए संगीत कला में एकविधता नही है। कहीं कहीं संगीत को सार्वत्रिकता होती है, परंतु यह स्तर अमूर्त रहता है। प्रायोगिक मनोविज्ञान के द्वारा किसी संगीत में वस्तुनिष्ठ पद्धती का प्रयोग करने की दृष्टि से संगीत कला एकसंघ नही है। बिना संगीत की वंश संगीत शास्त्रीय विशिष्टता को ध्यान में लिए संगीत की सार्वत्रिकता की भाषा का प्रयोग करना बडा स्थूल और भ्रममूलक होगा। मुद्दा यह है कि पाश्चिमात्य संगीतशास्त्रज्ञों ने संगीत के श्रोताओं पर होने वाले प्रभाव को देखने के संबंध में अन्वेषण की जो प्रणालियाँ प्रयोजित की है उनकी सार्वजनिक पात्रता हिंदुस्थानी संगीत के संदर्भ में विचार करते समय शंकास्पद बन जाती है, इस बात को ध्यान में लेना होगा। इसका कारण यही है कि पहले जिसका उल्लेख किया है उस मूल्यांकन विषयक निर्णय के सांकल्पनिक निश्चितता के बिना प्रायोगिक मनोविज्ञान संशोधन का आगे जाना संभव नहीं है।

हिंदुस्थानी रागों का श्रोताओं के मन पर क्या प्रभाव पडता है, इस संबंध में प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो अन्वेषण हो रहा है उसकी पद्धति के संबंध मे यहाँ इस पृष्ठभूमि पर विचार करना है।

प्रभाव विश्लेषण का अर्थ क्या है ? बाह्य चेतको की मार की अनुभूति पिंड अथवा सजीव के द्वारा लिए जाने पर वर्तन संबद्ध होता है और इसी के विश्लेषण को प्रभाव या परिणाम विश्लेषण कहते है। स्पष्ट है कि यह विश्लेषण मानसिक तथा शरीर वैज्ञानिक अंग का हो सकता है। एक और लक्षणीय बात यह है कि इस प्रकार के विश्लेषण में चेतक को स्थिरमूल्य माना जाता है। यहाँ पहले से ही ऐसा मान लिया गया है कि ग्राहक सजीव के, अथवा चेतकों के उद्भूत हो जाने की क्रिया का खुद चेतक पर कोई परिणाम नहीं होता। मानसिक तथा शरीर वैज्ञानिक अंगों के परिणाम विश्लेषण का मतलब है इस प्रकार दुहरी और द्विदिश क्रिया के एक ही ध्रुव का विश्लेषण। इसके विपरीत विश्लेषण की और एक पद्धति है जिस में चेतक निर्माता और चेतक ग्राहक, इस प्रकार दोनो ध्रुवों का विचार होता है।

अब समस्या यह है कि हिंदुस्थानी रागों के प्रभाव के संबंध में विचार करते समय उस प्रभाव को एकदिश क्रिया का निष्कर्ष मानकर कैसे चलेगा ? क्या रागरूप के निर्माण में श्रोताओं की प्रतिक्रिया से कला की गुणवत्ता के स्तर में कोई बदलाव नहीं आता ? पाश्चिमात्य संगीत पद्धति में संगीतालेख का आस्तित्व और उसकी सौंदर्यशास्त्रीय भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। संगीतालेख का आस्तित्व ही तो प्रयोग के पहले भी संगीत के अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध होने का प्रमाण है। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदुस्थानी संगीत की तुलना में पश्चिमी संगीत में अन्वयार्थ की क्रिया की अपेक्षा अमल और विस्तार की अपेक्षा ब्योरेवार रचना अधिक होती है। इसका मतलब यह है कि बहुतांश में लिखित संगीत के संदर्भ में प्रयुक्त पद्धति, मौखिक परंपरा के संगीत पर लागू नहीं होगी। तत्कालस्फूर्त रचना, श्रोताओं की प्रतिक्रिया का एक परिणाम होता है। इससे गतिमान तथा जिसका अनुमान नहीं लगा सकते ऐसे प्रयोग में परिणती हो सकती है। हिंदुस्थानी राग की सभी अवस्थाओं और प्रकारों में राग सिद्धी को लेकर यह गतिशीलता अनिवार्य होती है। ध्वनिमुद्रण बजाने अथवा सुनाने का अर्थ है एक उग्दम अथवा उपयोग जिसमें प्रयोग की दिशा में केवल आधा रास्ता तय हो सकता है - पूरा नहीं। इस प्रकार के आविष्कार को पठण कहा जा सकता है। इसलिए हिंदुस्थानी राग का यह एक अधुरा सिद्धीकरण होता है। इसका उपयोग प्रायोगिक मनोविज्ञान करे तो यही कहना पडेगा कि राग के बजाय रागबीज का उपयोग किया गया है। मूल्यांकन विषयक संकल्पना संबंध निर्णय किये बिना प्रायोगिक मनोविज्ञान का कार्य अर्थपूर्ण नहीं होगा, यह उपरोक्त पूर्वशर्त यहाँ पर पूरी नहीं होती यह बात यहाँ पर आसानी से ध्यान में आ जाती है। जिस संगीत परंपरा में संगीतालेख के द्वारा संगीत पूर्णांश अथवा बहुतांश में साकार हो जाता है, उसके संदर्भ में ध्वनिमुद्रण सुनाना अधिक अर्थपूर्ण हो सकता है। क्योंकि संगीत का ध्वनिमुद्रण वादन तथा प्रत्यक्ष प्रयोगित संगीत में गुणवत्ता की दृष्टि से बहुत कम फर्क रहता है। इसके विपरीत मौखिक परंपरा से युक्त आविष्कार ध्वनिमुद्रण-वादन में फ़ीका पडकर प्रयोग के स्थान पर पठण बन जाता है। संगीत की गुणवत्ता में फर्क करने वाले तत्कालस्फूर्त और श्रोता-प्रतिक्रिया वाले मूल्यांकन संबद्ध घटक संगीत प्रयोग में कार्यकारी होने से पठण का राग प्रयोगित राग से भिन्न रहता है। इसीलिए हिंदुस्थानी रागों का प्रभाव विश्लेषण अनुसंधान की दृष्टि से पहले से ही कुछ कमी के साथ ही शुरू होता है। हिंदुस्थानी रागों की अंगभूत गतिशीलता एवम् अभविष्यनीयता ध्यान में लेते हुए शरीर और मानसिक प्रकार से परिणाम विश्लेषण करने का पाश्चिमात्य प्रायोगिक पद्धतियों का प्रयोग करने के पहले बडी मात्रा में पुनर्विचार करना आवश्यक है।

तुलनात्मक दृष्टि से कुछ कम महत्त्व का मुद्दा यह है कि चेतक-निर्माता और ग्राहक का विचार करने के लिए भी मूलतः कौनसा सांगीतिक एकक प्रयोग में लाया जाए। रागों में द्रुत चीज इसके लिए आदर्शभूत लग सकती है। निश्चित ही, छोटी और शब्दार्थ समझ में आ जाने के संभव कारण की वजह से हेफनेर के विशेषण-वृत्तांकन की पद्धती (तथा तत्सम अन्य पद्धतियों) के संदर्भ में द्रुत चीज़ सुविधाजनक लग सकती है। पर यहाँ पर भी, ध्यान में आयेगा कि, चीज़ में भी राग के बीज ही होते हैं। हिंदुस्थानी राग का रुप अंतिमतः और पूर्णतः उसके विस्तार ही में होता है। चीज़ का मतलब है रचना के बीज, प्रस्तुतीकरण का ढाँचा रखनेवाली चीज़, बस्स! राग के केवल आरोहावरोह का उपयोग करने की अपेक्षा चीज़ का उपयोग करना हमेशा अच्छा होता है। परंतु राग के पूर्ण चित्र अथवा रूप के नाते चीज़ का उपयोग करना ठीक नहीं है। अप्रचलित या अनवट रागों के बारे में बात करे तो चीज़ अधिक मात्रा में पर्याप्त लग सकती है। क्योंकि कल्पनापूर्ण विस्तार की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें अधिक गुंजाईश नहीं रहती। ऐसे रागों के बारे में ये कहा जा सकता है की संपूर्ण राग एक ही चीज़ में समाविष्ट हो। इन रागों की रचना में इतनी कठोरता होती है कि विस्तार के मार्ग निश्चित तथा सीमित होते हैं। इसीलिए इन रागों के विस्तार के सम्बन्ध में अटकलें लगायी जा सकती है। वे भविष्यनीय होते हैं। यहीं हम एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे में प्रवेश कर पाते हैं। क्या प्रभाव विश्लेषण के लिए सभी रागों का उपयोग करना उचित होगा ? इसका अधिक ब्योरेवार विचार करेंगे।

केवल अलग अलग सांगीतिक स्वर परिणाम नहीं करते, इसे सर्वमान्य मानना पडेगा। हर एक स्वर को संदर्भ की चौखट मिल जाने से उसका शारीर-मानस परिणाम संभव होता है। (रसोत्पत्ति का प्रवेश केवल शब्दार्थ के द्वारा ही चर्चा में हो सकता है।) प्रश्न यह है कि क्या हम यह कह सकते है कि दरबारी और नटबिलावल का प्रभाव समान हो सकता है ? पं. भातखंडेजी का त्रिविध वर्गीकरण (शुद्ध रे, ध, कोमल ग, नि वाले आदि) व्याकरण की रचना का ढंग हुआ। परंतु परिणामकारकता के पहल पर विचार करना हो तो यमन और गौडसारंग, यमन और छायानट को समान सूत्र में बाँध देना उचित नहीं होगा। अन्य थाटों के संदर्भ में भी यही मुद्दा सामने आता है। परिणामकारकता की कसौटी पर आधारित रागवर्गीकरण करना आवश्यक है। रस की भाषा में ही क्यों न हो, परंतु कोई विशेष परिणामकारकता जिनसे संलग्न हो गयी हो, जो भावस्थिती से नाता बताते हों ऐसे भैरवी, जोगिया, दरबारी आदि रागों को चुना जाए । जोड रागों को भी अलग रखा जाए और कानडा, मल्हार, श्री, बिलावल आदि प्रकार भी विचारार्थ न लिए जाए। इस ढंग से सोचने में भी एक अस्थायीपन है, परंतु सैद्धांतिक भूमिका लेने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है। जोड राग तो बुद्धि की संतान हैं। जोड रचना की कुशलता इनका लक्ष्य होता है, भावस्थिती निर्माण करना नहीं। संगीतकार तथा संगीत-समीक्षक आदि ऐसे रागों को अप्रचलित जोड, दुर्लभ आदि नाम से पुकारते हैं इस का भी कारण यही है।

सच पूछें तो पिलू, पहाडी, गारा, मांड जैसे धुन रागों की ओर हम मुड सकते है। इन रागों में पकड़- पहचान देने वाले वाक्यांश- होते है, परंतु वैसे उनकी रचना ढीली-ढाली, शिथिल होती है। लोकसंगीत में केवल कुछ रागों की छायाएँ दिखती हैं यह भी लक्षणीय है। नमूनों को इकट्ठा करने और उन का विश्लेषण पूर्ण करने के कार्य जब तक अच्छी तरह हो तब तक एक बात ध्यान में रखने योग्य है। राग भावस्थिती संबंध, वंश संगीत, शास्त्रीय तथा वंश मानस शास्त्रीय होने की संभावना जब सामने हो तब परिणामविश्लेषण के लिए जोड रागों तथा मूलत: भावस्थिती न रखने वाले रागों को लेने की अपेक्षा धुनरागों को चुनना फलदायी होगा।

विशेषण सोपान परंपरा पद्धति अथवा विशेषण वृत्तांकन पद्धति का उपयोग हिंदुस्थानी रागों के संदर्भ में करने पर और एक समस्था सामने आ जाती है। जिस संगीत परंपरा में 'प्रोग्राम म्यूझिक' का संगीत प्रकार तथा यह संकल्पना स्वीकार्य है और महत्त्व की भी है, ऐसी परंपरा में उपरोक्त पद्धतियाँ विकसित हो गयी है। श्रोता-प्रतिक्रिया कैसे ज्ञात होगी इस संदर्भ में खुले तौर पर, वर्णनपर भूमिका सामने रखने वाले संगीत का कार्य प्रभावी होता है। परिणाम विश्लेषण की पद्धतियों में भी इसका असर दिखता है। रचना प्रस्तुतीकरण एवं अंतिम आविष्कार के संदर्भ में हिंदुस्थानी रागों के प्रकार बिलकुल निराले है। मल्हार, बसंत आदि पारंपरिक 'मौसमी' रागों को छोड दे तो निश्चित रूप से वर्णनपर आशय रखने वाले राग पाये नहीं जाते। जिस संगीत में आकृति तत्त्व पर जोर रहता है वह संगीत वर्णनपर आशय रखने वाले 'प्रोग्राम म्यूझिक' की अपेक्षा निराला होता है। अतः ऐसे संगीत का परिणाम विश्लेषण करने के लिए जिन पद्धतियों का उपयोग करना है वे भी कुछ निराली होनी चाहिए यह बात स्पष्ट है।

संगीत में दो ही भाव-स्थितियाँ होती हैं। अन्य भाव भावनाओं का जागरण होने पर भी उनका समावेश उत्साह-निरुत्साह की दो श्रेणियों में हो सकता है, और यह बात मैंने अन्यत्र स्पष्ट कर दी है। संगीत पर की जाने वाली प्रतिक्रिया इन दो श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी में आएगी, यहाँ तक सैद्धांतिक तथा सर्वसाधारण विधान किया जा सकता है। व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ भिन्न भिन्न हो सकती हैं; परंतु वे व्यक्तिगत कल्पना साहचर्यपर निर्भर करती हैं। विशेषण सोपान परंपरा और विशेषण वृत्तरेखन इन पद्धतियों को उपरोक्त बात को भी ध्यान में लेना आवश्यक है। संगीत और भाव-स्थिति इनमें अंगभूत, सार्वत्रिक संबंध होता है, इस प्रकार की निश्चित भूमिका केवल एक विशिष्ट गंतव्य तक ही की जा सकती है। इसके अलावा व्यक्तिगत कल्पना साहचर्य विभिन्न उपवर्ग बनाते हैं और सर्वसाधारण सिद्धांत बनाना असंभव करा देते हैं। अधिक ब्योरेवार सूची बनाने से अथवा प्रतिक्रियाओं की नोंद करने वाले विशेषणों को सूची में अंतर्भूत करने से यह समस्या हल नहीं हो सकती। संगीत की सार्वत्रिकता का मर्यादित चलन ध्यान में लेते हुए, उसके अनुसार अधिक व्यापक तथा अपरिहार्यता के साथ उलझनभरी पद्धतियों के समूह तैयार करने के अलावा हमारे पास कोई चारा नहीं है।

हिंदुस्थानी रागों की सिद्धी स्वरसंहति पद्धति से होती है, क्या इसका भी विचार चेतक-ग्राहक संकलित परिणाम के विश्लेषण के समय किया जाना चाहिए। उत्तर है 'हाँ'। क्योंकि स्वरसंहति और स्वरसंवाद की दो पद्धतियों के कारण विभिन्न सांगीतिक विशेषताओं का आस्तित्व सिद्ध होता है। स्वरसंवाद- अनेक वाद्यों का एकदम उपयोग- इसलिए अधिक प्रकार की ध्वन्यात्मक तथा वाद्यात्मक प्रतिकात्मता : इसलिए सूचित भावताओं के कल्पना साहचर्य द्वारा जागरण होने की संभावना : इस प्रकार शृंखला बतायी जा सकती है। इस स्वरसंवाद पद्धति से सिद्ध होने वाले संगीत के बारे में विशेषण सोपान परंपरा अथवा तत्सम पद्धतियों का उपयोग अधिक फलदायी होगा। इसके विपरीत स्वरसंहति पद्धति के कारण संगीत के द्वारा सूचित भावनाओं का संकेत मिलने की संभावना कम दिखायी देती है। इस कारण के लिए भी हिंदुस्थानी रागों के संदर्भ में निराली पद्धति प्रयुक्त करने की आवश्यकता है।

अब तक के विवेचन के निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

१) प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान, मूल्यांकनात्मक बातों के बारे में निश्चित सांकल्पनिक निर्णय लेने पर ही शुरू होता है।

२) परिणाम विश्लेषण संगीतसिद्धी जैसी द्विध्रुवात्मक प्रक्रिया एक ही ध्रुव का विचार करती है और इसलिए अनुसंधान आधा अधूरा शुरू होने की संभावना है। चेतक-निर्माता-ग्राहक संकलित परिणामों का विश्लेषण का मार्ग अधिक स्वीकार्य है।

३) हिंदुस्थानी रागों की सिद्धी प्रयोग में होती है, पठण में नहीं। तत्कालस्फूर्त, गतिमान, अभविष्यनीय राग संगीत के लिए अन्य संगीत के लिए योग्य सिद्ध होने वाली पद्धति का उपयोग करने से काम नही चलेगा।

४) हिंदुस्थानी रागों में वर्णन पर आशय, वाद्यसंबद्ध प्रतिकात्मकता और संगीतालेख का महत्त्व न होने से ये विशेषताएँ रखने वाले पाश्चिमात्य संगीत के लिए योग्य पद्धतियों की अपेक्षा निराली पद्धति का उपयोग यहाँ किया जाना चाहिए।

५) संगीत भावस्थिती की समस्या यही तो वास्तव में परिणाम विश्लेषण की समस्या की आत्मा है। संगीत भावस्थिती की समस्या सार्वत्रिकता की अपेक्षा वंशकेंद्रित तथा एक से अधिक स्तरों पर उत्तरों को खोजने वाली होने से विशेषण सोपान परंपरा अथवा तत्सम पद्धतियों को बदल देना चाहिए अथवा अनुसंधान का विषय बने संगीत का स्वरूप ध्यान में लेकर नयी पद्धतियों को विकसित करना चाहिए।